समयसार! १३ वीं गाथा, टीका है न? **यह जीवादि नव तत्त्व....** जीवादि नव तत्त्व का अर्थ है कि जीव की एक समय की पर्याय और अजीव का ज्ञान और पर्याय, आस्रव की उत्पत्ति — पुण्य-पाप की, वह पर्याय; बन्ध-राग में रूक जाना, वह बन्धपर्याय और संवर-शुद्ध चैतन्य के अवलम्बन से जो राग के अभावरूप संवररूप पर्याय, वह भी पर्याय है और कर्म की शुद्धता होकर अन्तर में शुद्धता की (पर्याय) प्रगट होना... संवर में जो शुद्धता है, उससे शुद्धि की वृद्धि हो ऐसी पर्याय को निर्जरा कहते हैं और राग से तथा सर्व से मुक्त होकर अपने में पूर्ण आनन्द की, पूर्ण ज्ञान की पर्याय का होना, वह भी नव तत्त्व में एक पर्याय है। ये जीवादि नव तत्त्व.... सूक्ष्म बात है। **भूतार्थनय से जाने हुए....** इसका अर्थ यह है कि नौ की जो पर्याय है, उसकी

दृष्टि छोड़कर, त्रिकाली ज्ञायकभाव जो सत्य, ध्रुव, चैतन्यप्रभु (है), उसके आश्रय से — इस भूतार्थनय से इस त्रिकाली ज्ञायकभाव के आश्रय से उत्पन्न होना, वह भूतार्थनय से जाना हुआ कहा जाता है। आहाहा!

भूतार्थनय से जाने हुए नवतत्त्व में पर्याय का भेद है, उसका लक्ष्य छोड़कर त्रिकाली ज्ञायकभाव ध्रुव है, भूतार्थ-विद्यमान पदार्थ है, परिपूर्ण आनन्द और परिपूर्ण अतीन्द्रियज्ञान से भरा हुआ प्रभु है, जो नवतत्त्व में कभी एक पर्याय में आया नहीं। आहाहा! ऐसा जो भूतार्थ अर्थात् त्रिकाली ज्ञायक शुद्ध चैतन्य, उसकी नय से अर्थात् उसकी दृष्टि से जाने हुए सम्यग्दर्शन है। आहाहा!

नौ की पर्याय में से लक्ष्य छोड़कर त्रिकाली ज्ञायकभाव का लक्ष्य करके (जो भाव) उत्पन्न होता है, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। धन्नालालजी! आहाहा! यहाँ से धर्म की पहली सीढ़ी-धर्म की पहली शुरुआत होती है; बाकी पुण्य और दया और दान आदि विकल्प हों, वे कोई धर्म नहीं है। आहाहा! वे कोई सम्यग्दर्शन नहीं है, और वे सम्यग्दर्शन का कारण भी नहीं है। आहाहा! नवतत्त्व की जो पर्याय है... यहाँ जीव की एक समय की पर्याय को 'जीव' तत्त्व में यहाँ नौ में गिनने में आया है। समझ में आया? यह नव पर्याय की योग्यता से पर्याय में होते हैं परन्तु उसमें से नौ प्रकार की पर्याय का लक्ष्य छोड़कर त्रिकाली चैतन्य भगवान भूतार्थ-विद्यमान पदार्थ, ध्रुव, उसके नय से देखने से सम्यग्दर्शन होता है — ऐसा होने पर भी, सम्यग्दर्शन की पर्याय में वह त्रिकालीभाव नहीं आता। क्या कहा? जुगराजजी है? जुगराजजी गये। समझ में आया? नौ की व्याख्या बाद में करेंगे। अभी भी उसमें से पर्याय का लक्ष्य, भेद का लक्ष्य छोड़कर... भेद है... मोक्ष की पर्याय भी है, संवर, निर्जरा की पर्याय भी है, नौ में कितनी अशुद्ध पर्याय है और कितनी शुद्ध है। पुण्य और पाप, आस्रव-बन्ध, वे अशुद्ध हैं और संवर-निर्जरा वह शुद्ध की अपूर्णता है और मोक्ष की पर्याय, शुद्ध की पूर्णता है, परन्तु वह सब पर्याय है। आहाहा!

उसमें से भूतार्थ ज्ञायकप्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द ध्रुव चैतन्य प्रभु, जो कभी आस्रव की और बन्ध की पर्याय में तो आया नहीं परन्तु वह संवर, निर्जरा, और मोक्ष की

पर्याय में भी कभी ज्ञायक नहीं आता। आहाहा! तथापि उसकी दृष्टि करने से पर्याय में सम्यग्दर्शन होता है तो उस सम्यग्दर्शन का विषय त्रिकाली है, उसकी श्रद्धा होती है और वर्तमान ज्ञान में त्रिकाली चीज का ज्ञान होता है, तथापि ज्ञान की पर्याय में और श्रद्धान की पर्याय में वह त्रिकाली द्रव्य आता नहीं। आहाहा! सूक्ष्म विषय है। गाथा ऐसी आ गयी न? आहाहा!

जीवादि नव तत्त्व भूतार्थनय से जाने हुए.... आहाहा! सम्पूर्ण एकरूप चीज जो ध्रुव सदृश सामान्य एक अखण्ड त्रिकाली निरावरण अखण्ड, एक, प्रत्यक्ष प्रतिभासमय जो चीज है, ज्ञान की पर्याय में प्रत्यक्ष प्रतिभास होता है — ऐसी जो त्रिकाली चीज अविनश्वर - कभी नाशवान् होती नहीं, नाशवान पर्याय में अविनाशी कभी आता नहीं — ऐसा परम पारिणामिकभाव, परम पारिणामिकभाव लक्षण — ऐसा सहज परमात्मतत्त्व, जिसे यहाँ भूतार्थ कहा गया है, वह सहज परमात्मतत्त्व, वह मैं हूँ। आहाहा! समझ में आया?

श्रोता : पर्याय से द्रव्य भिन्न रहता है, यह ठीक से समझ में नहीं आता?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय और द्रव्य तो दो भिन्न ही है। पर्याय में द्रव्य आता नहीं परन्तु पर्याय - सम्यग्दर्शन की पर्याय में द्रव्य आता नहीं परन्तु द्रव्य की जितनी ताकत है, उतनी सामर्थ्य की प्रतीति होती है। जो सामान्य त्रिकाली वस्तु है, उसकी प्रतीति में उसका पूर्ण सामर्थ्य आता है परन्तु वह चीज नहीं आती। अरे! आहाहा!

भाई! यह तो अपूर्व की बात है। अनन्त काल में किया नहीं और वर्तमान में तो गड़बड़ ऐसी हो गयी है कि यह व्रत करो, अपवास करो, प्रतिमा धारण करो, और उससे धर्म हो जायेगा.... सेठ! इस सेठ को बाहर में प्रवर्ति करे तो उससे धर्म हो जायेगा मानो... उसमें तो राग मन्द होता हो तो पुण्य है और पुण्य, वह आत्मा नहीं है। आहाहा! पुण्य के परिणाम के समीप में - अन्तर के समीप में ध्रुव चैतन्य पड़ा है। अरे! संवर-निर्जरा की पर्याय में — एक समय की पर्याय में समीप में जो ध्रुव पड़ा है, उसकी दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है — ऐसा है प्रभु! तेरी प्रभुता का पार नहीं नाथ! आहाहा!

श्रोता : ऐसी बात सुनने को नहीं मिलती।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं मिलती, भाई! बापू! क्या हो? अरे...रे...! परमात्मा का

विरह पड़ा! भरतक्षेत्र में, सर्वज्ञ परमात्मा रहे नहीं और सर्वज्ञ की पर्याय उत्पन्न होने के योग्य जीव रहे नहीं। आहाहा! इस काल में, प्रभु! सम्यग्दर्शन क्या चीज है और उसका विषय क्या है? यह अलौकिक बातें हैं, प्रभु! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि नवतत्त्व की पर्याय में नौ भेद है परन्तु उसमें से अकेला आत्मा त्रिकाली है... आहाहा! वर्तमान पर्याय को, बहिर्लक्ष्य में जो है, उस पर्याय को अन्तर्लक्ष्य में करने से... भूतार्थ अर्थात् त्रिकाली भगवान आत्मा, दृष्टि में-श्रद्धा में और ज्ञान में आता है, उस दृष्टि को सम्यग्दर्शन कहा जाता है। आहाहा! है?

जीवादि नव तत्त्व पर्याय — भेद; उनमें से भूतार्थनय से एकरूप त्रिकाली को देखने से सम्यग्दर्शन होता है। वह सम्यग्दर्शन 'ही' है — ऐसा शब्द संस्कृत में पड़ा है। सम्यग्दर्शन ही यह है; दूसरा सम्यग्दर्शन है ही नहीं। समझ में आया? नव तत्त्व के भेद की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन है ही नहीं। आहाहा! और नव तत्त्व में जो संवर-निर्जरा है.... आहाहा! उसे निश्चय से तो उसे परद्रव्य कहा गया है, नियमसार में! पर्याय है उसकी निर्मल, वह स्वद्रव्य नहीं; स्वद्रव्य तो उससे भिन्न अखण्डानन्द प्रभु है। आहाहा! ज्ञानचन्दजी! आज पण्डितजी को बुखार आया है, फूलचन्दजी को, आये नहीं बुखार आया है। आहाहा!

प्रभु! तू कितना है अन्दर? आहाहा! यह तो हम हर समय वह हमारा आकाश का दृष्टान्त देते हैं। आकाश का अन्त कहाँ आया, प्रभु? लक्ष्य में-विचार में लो कि आकाश... आकाश... आकाश... आकाश... लोक पूरा हो गया। पीछे अलोक में भी आकाश तो है तो वह आकाश कहाँ पूरा हुआ? है अन्त? क्या चीज है यह? आहाहा! इस क्षेत्र का स्वभाव भी जहाँ लक्ष्य में आना महा कठिन.... आकाश पीछे... पीछे... पीछे... पीछे... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... योजन चले जाओ ऐसे के ऐसे लक्ष्य में, तो भी कहीं अन्त नहीं, प्रभु! ऐसा जो आकाश, उसके जो अनन्त प्रदेश, आहाहा! उससे भी भगवान आत्मा में अनन्तगुने गुण हैं। भाई! यह क्या चीज है? समझ में आया? क्षेत्र में तो उसका (क्षेत्र) असंख्य प्रदेशी शरीरप्रमाण है परन्तु उसकी जो गुण की संख्या है, प्रभु! गजब बात है नाथ! आहाहा! यहाँ ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व करते... करते... करते... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त...

अनन्त... अनन्त... अनन्त... तो अनन्त का अन्तिम यह गुण है — ऐसा कुछ है नहीं ? क्या चीज है यह ? आहाहा ! है ? ऐसी जो अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुण की संख्या का एकरूप, वह भूतार्थ है। आहाहा ! जिसमें गुण-गुणी का भेद भी नहीं है। समझ में आया ?

नव तत्त्व की पर्याय का भेद भी जिसकी दृष्टि में नहीं और अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुण हैं और उन गुण का धारक गुणी है — ऐसा भेद भी जिसमें नहीं, वह सम्यग्दर्शन का विषय भूतार्थ त्रिकाल (आत्मा है)। आहाहा ! उसकी दृष्टि से ही सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा ! है ? **(- यह नियम कहा);....** यह वस्तु का नियम कहा। आहाहा ! भाई ! यह शब्द कोई कथा-वार्ता नहीं; यह तो भगवत्स्वरूप की कथा है। आहाहा !

क्योंकि तीर्थ की प्रवृत्ति के लिये.... तीर्थ की प्रवृत्ति का अर्थ ? व्यवहारनय से तीर्थ उत्पन्न होता है — ऐसा यहाँ नहीं है परन्तु जो चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ गुणस्थान आदि होता है, वह पर्याय है, और वह तीर्थस्वरूप है। उस तीर्थ की प्रवृत्ति के लिए.... पर्याय के भेद हैं, वे तीर्थ अर्थात् दर्शन-ज्ञान-चारित्र की हीनाधिक पर्याय के भेद, उस प्रवृत्ति के लिए अभूतार्थनय से कहा जाता है। नौ, क्योंकि पर्याय न हो तो धर्म भी नहीं, पर्याय न हो तो संवर-निर्जरा और मोक्ष भी नहीं। आहाहा ! ये भेद अर्थात् पर्याय तीर्थ की प्रवृत्ति के लिए.... उससे तीर्थ उत्पन्न होता है — ऐसा यहाँ नहीं है। पर्याय में से तीर्थ उत्पन्न होता है — ऐसा नहीं है। वह पर्याय स्वयं तीर्थरूप है, भेद है। समझ में आया ? आहाहा ! चौथा गुणस्थान... क्योंकि चौदह गुणस्थान, वे द्रव्य में नहीं और चौदह गुणस्थान वे तीर्थ अर्थात् पर्याय के भेद में है, तो भेद में है — यह बताने के लिए (अर्थात्) तीर्थ की प्रवृत्ति के लिए, उसका अर्थात् पर्याय के परिणमन का ज्ञान कराने के लिए.... आहाहा ! उसमें से ऐसा अर्थ निकालते हैं (कि) व्यवहारनय से तीर्थ प्रवृत्ति में होता है। व्यवहारनय से होता है — ऐसा यहाँ है नहीं, यहाँ तो पर्याय में जो प्रवृत्ति है वह भेद की प्रवृत्ति है, उस तीर्थ की अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की हीनाधिकदशा का प्रवर्तन है, उसे यहाँ तीर्थ की प्रवर्तना कहा जाता है। सूक्ष्म विषय है भाई ! उसने कभी निज घर का पता नहीं लिया एक समय की पर्याय के पीछे सारा ध्रुव तल में, तलिया पाताल अन्दर पड़ा है। आहाहा ! पाताल कुआँ

होता है न ? वैसे ही एक समय की नौ की पर्याय के पीछे... आहाहा ! पाताल कुएँ की तरह महा ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... (आत्मा पड़ा है) । आहाहा ! उसका आश्रय लेने से सम्यग्दर्शन होता है । तो कहते हैं नौ कहे क्यों ? कि पर्याय में नौ भेद है और व्यवहारनय का विषय चौथा गुणस्थान, पाँचवाँ, छठवाँ, सातवाँ... अरे... ! तेरहवाँ, यह सब व्यवहारनय का विषय है । आहाहा ! समझ में आया ?

पर्याय का भेद, वह व्यवहारनय का विषय है और यह तीर्थ उसमें आता है । चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ, सातवाँ और दसवाँ, तथा सिद्ध — यह तीर्थ की प्रवृत्ति के परिणमन में ऐसा होता है, यह बतलाने के लिए अभूतार्थनय से व्यवहारनय से नौ तत्त्व कहे हैं । आहाहा ! अरे ! इसकी बात तो देखो, प्रभु ! उसमें समयसार ! आहाहा ! उसमें कुन्दकुन्दाचार्य की वाणी और अमृतचन्द्राचार्य सन्त उसकी टीका करनेवाले, केवली के मार्गानुसारी हैं । आहाहा ! उसे, यहाँ कहते हैं प्रभु ! एक बार सुन तो सही नाथ ! भगवन्त ! ऐसा कहकर आचार्य बुलाते हैं । आहाहा ! पामर को भगवान रूप से बुलाते हैं । प्रभु ! ऐसा कहते हैं । आहाहा ! तेरी प्रभुता में जो भगवत्स्वरूप अन्दर पड़ा है... आहाहा ! ऐसा त्रिकालीस्वरूप जो भगवत्स्वरूप है । आहाहा ! भग अर्थात् अनन्त आनन्द, ज्ञान आदि, वान स्वरूप है । भगवन्त, भगवानस्वरूप तेरा त्रिकाली (आत्मा है) । आहाहा ! वह जिनस्वरूप है । कहा न ?

घट घट अन्तर जिन वसै, घट घट अन्तर जैन ।
मति मदिरा के पान सो, मतवाला समझे न ॥

अपने अभिप्राय में पागल हुआ । आहाहा ! अपना मत — मदिरा, मतरूपी मदिरा — शराब पी है । वह जिनस्वरूप त्रिकाल है, उसे नहीं जानता । बस, पर्याय में हम हैं — ऐसा मतवाला है । मतवाला - अपने मिथ्या अभिप्राय से त्रिकाली जिनस्वरूप क्या चीज है — यह नहीं जानता । समझ में आया ? वह त्रिकाली जिनस्वरूप है, वह भूतार्थ है । आहाहा ! भाई ! मार्ग कोई अलौकिक है । इस धर्म की प्रवृत्ति के लिए, अर्थात् पर्याय में परिणति के समझाने के लिए... पर्याय में परिणति होती है, उस पर्याय को समझाने के कारण (उसका ज्ञान कराने के लिए) यह तीर्थ की प्रवृत्ति पर्याय... समझ में आया ? सामने पुस्तक है न ? **अभूतार्थनय से कहे जाते हैं,....** यह व्यवहारनय से कहा जाता है ।

नौ प्रकार की पर्याय.... मोक्ष भी व्यवहारनय से कहने में आया है। पर्याय है न? आहाहा! मोक्ष का मार्ग जो संवर-निर्जरा है, वह भी व्यवहारनय से कहने में आया है। आहाहा! है या नहीं उसमें यह?

श्रोता : भेदरूप परिणति के लिए भी व्यवहारनय।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, वह भी परिणति-पर्याय में परिणति होती है, उसे बतलाने के लिए व्यवहारनय से नव तत्त्व कहे हैं।

श्रोता : तीर्थ की प्रवृत्ति अर्थात् धर्म प्रवृत्ति?

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म की पर्याय है, वह तीर्थ की प्रवृत्ति है। उससे तीर्थ होता नहीं, व्यवहारनय से तीर्थ प्रगट होता है, वह प्रश्न यहाँ है नहीं। यहाँ तो पर्याय की प्रवृत्ति होती है, वह तीर्थ की प्रवृत्ति-सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, चौथे, पाँचवें, छठवें, सातवें, आठवें, नौवें (गुणस्थान) आदि वह पर्याय होती है। उस पर्याय की प्रवृत्ति, वह तीर्थ प्रवृत्ति है। वह धर्म पर्याय से होता है और पर्याय के आश्रय से यह प्रश्न यहाँ है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह सूक्ष्म बात है। पण्डितों का भी पानी उतर जाये ऐसा है इसमें तो। देवीचन्दजी! केवलज्ञान की पर्याय भी पर्याय है, तो उस पर्याय की प्रवृत्ति होती है, यह बतलाने के लिये नव तत्त्व बतलाये हैं। आहाहा! समझ में आया?

श्रोता : शास्त्र के सब अर्थ बदल दिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सत्य है। उसका जो अर्थ है, वैसा करते हैं। उल्टा अर्थ करते थे तो बदल दिया। आहाहा! प्रभु! वीतराग का मार्ग भाई! क्योंकि वस्तु जो त्रिकाली वस्तु है, जो सम्यग्दर्शन का विषय है, उसमें तो चौदह गुणस्थान भी नहीं है। ज्ञानचन्दजी! उसमें चौदह गुणस्थान ही नहीं, उसमें तो मोक्ष भी नहीं। आहाहा! वह तो त्रिकाली स्वरूप ही है, तो मुक्तस्वरूप ही है। मुक्त पर्याय होती है, वह दूसरी चीज है। यह वस्तु है, वह तो त्रिकाल मुक्तस्वरूप ही है। जिनस्वरूप कहो, मुक्तस्वरूप कहो (दोनों एकार्थ हैं)। समझ में आया?

अभी आया है न जापान में से, नहीं ? एक जापानी व्यक्ति बड़ा ऐतिहासिक शोधक है, उसने बहुत शोध की है। ६३ वर्ष की उम्र है, जापानी व्यक्ति और उसका लड़का (उसकी) १७ वर्ष की उम्र है तो उसने सारा इतिहास शोधकर जैनधर्म क्या है ? यह शोधा है। बहुत आया है, वह आया है, देखा ? या नहीं ? पुस्तक है भाई ! हेमराज को बाद में देना, तो कहते हैं... पूरा स्वरूप तो उसे कुछ भान नहीं परन्तु उसने ऐसा लिखा कि जैनधर्म अनुभूतिस्वरूप है। उसने शोध करके लिखा, वह जापानी परदेशी भी शास्त्र की शोध करते-करते... शास्त्र बहुत हजारों ढूँढ़े, कि जैनधर्म क्या ? कि अनुभूतिस्वरूप, वह जैनधर्म है। यह राग की क्रिया और दया, दान, व्रत, भक्ति का (विकल्प), वह जैनधर्म नहीं। सेठ ! जापानी व्यक्ति, बहुत ऐतिहासिक है परन्तु यह तत्त्व, यह तत्त्व तो इस तत्त्व की खबर तो उसे है ही नहीं। यह तो अभी जैन में अन्दर में रहनेवालों को पता नहीं तो उसको — बेचारे को (कहाँ से पता होगा)। परन्तु शोध करके इतना निकाला। दो बोल — हम निकालें उसमें से कि जैनधर्म क्या है ? कि अनुभूति जो त्रिकाली चीज की अनुभूति तो वह अनुभूति पर्याय है और त्रिकाली तो... इतना सब तो वह पहुँच नहीं सकता, जापानी है न ! एक बात; और दूसरी बात उसने लिखा कि आत्मा निर्वाणस्वरूप ही है — ऐसा लिखा है। तो हम उसको कहते हैं वह मुक्तस्वरूप ही है। यदि मुक्तस्वरूप न हो तो पर्याय में मुक्तस्वरूप की पर्याय कहाँ से आयेगी ? तो वह भी ऐसा कहते हैं। देवीचन्दजी ! वह देखा है ? पढ़ा है ? नहीं पढ़ा है, अब पढ़ना। हेमराजजी को दिया है, पढ़ना, वह पढ़ने योग्य है थोड़ा। आहाहा ! अनुभूति... फिर लिया निर्वाणस्वरूप। आहाहा ! निर्वाणस्वरूप इस अनुभूतिस्वरूप है, यह पर्याय ली। पर्याय की उसे तो खबर नहीं होगी परन्तु निश्चय से लो तो आत्मा अनुभूतिस्वरूप ही त्रिकाल है। क्या कहा ? ७३ गाथा — कर्ता-कर्म (अधिकार की) ७३ गाथा में (कहा है) — पर्याय में जो षट्कारक का परिणमन होता है, उससे अनुभूति — भगवान भिन्न है — ऐसा बतलाया है। यह अनुभूति यहाँ उसमें बताना है तो अनुभूति पर्याय बताना है परन्तु वस्तु अनुभूतिस्वरूप वह त्रिकाल है। आहाहा ! अब ऐसी बातें !

यह अनुभूति त्रिकाल.... ७३ गाथा कर्ता-कर्म (अधिकार) में कहा है। अनुभूति

त्रिकाल, वह अनुभूति है और दूसरा वहाँ भी लिया है — प्रवचनसार में, आज्ञा लेते हैं न, स्त्री से... चरणानुयोग अधिकार नहीं आया? वह स्त्री से आज्ञा लेते हैं कि हे स्त्री! इस शरीर को रमानेवाली! मेरे आत्मा को रमानेवाली तू नहीं है। आहाहा! हे स्त्री! तू मुझे आज्ञा दे, मैं मेरी अनादि अनुभूति के पास जाना चाहता हूँ। आहाहा! प्रवचनसार, चरणानुयोग (सूचक चूलिका में) है। आहाहा! इतनी सब तो वे लोग शोध नहीं सकते परन्तु यह तो इतना थोड़ा लिया। यह तो अलौकिक बातें... बापू! अभी जैन के पण्डितों को पता नहीं पड़ता वहाँ। आहाहा!

यह अनुभूतिस्वरूप ही भगवान है, पर्याय नहीं। वह त्रिकाली अनुभूतिस्वरूप है तो उसके आश्रय से पर्याय (में) अनुभूति होती है। वह मुक्तस्वरूप ही है, भगवान मुक्तस्वरूप (ही है); मोक्ष (मुक्त) पर्याय नहीं। त्रिकाली द्रव्य मुक्तस्वरूप ही है, यह कलश में आता है। कलश में — समयसार में कलश में आता है। '**स एव मुक्तः**' आहाहा! श्लोक आता है न? श्लोक पीछे है '**एव**' मुक्त एव। अमृतचन्द्राचार्य का कलश है, फिर यादगिरी कहाँ थोड़े ही याद रहती है? हमारा क्षयोपशम तो इतना नहीं है, भाव याद रहते हैं, कहाँ क्या पाठ है! आहाहा! **मुक्त एव** इस ओर है, श्लोक है, पीछे है समयसार में। तो उसमें कहा है कि आत्मा निर्वाणस्वरूप है तो उसका अर्थ? है? १९८ वाँ कलश है, ३१८ वीं गाथा है; आहाहा! हाँ, मिला १९८। '**शुद्धस्वभाव नियतः सः हि मुक्त एव**' १९८ कलश। एक, नौ, और आठ, है? **सः हि मुक्त एव** अन्तिम शब्द है। भगवान आत्मा **मुक्त एव** आहाहा! मोक्ष की (मुक्ति की) पर्याय की बात यह नहीं। भगवान! दूसरी भाषा में कहें तो जो चौदह और पन्द्रह गाथा में अबद्धस्पृष्ट कहा है, १४-१५ गाथा में **अबद्धस्पृष्ट पस्सदि** — जो कोई आत्मा को अबद्धस्पृष्ट देखे तो वह जैनशासन देखता है। तो उसका अर्थ? अबद्ध कहो या मुक्त कहो। बद्ध से रहित कहो या मुक्त कहो। उस मुक्तस्वरूप को जो अन्तर में देखते हैं, शुद्ध उपयोग से, वह शुद्ध उपयोग जैनशासन है। आहाहा! यह व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प उठता है, वह जैनशासन नहीं है। आहाहा! देवीचन्दजी! ऐसी बात है, भाई! **सः हि मुक्त एव।** इन्होंने निर्वाण लिखा है परन्तु इन्हें इतना सब कुछ पता नहीं होता परन्तु यह तो.... समझ में आया?

भगवान आत्मा, जो यहाँ भूतार्थ कहा (गया है), वह मुक्तस्वरूप है। समझ में

आया ? उस मुक्तस्वरूप के लक्ष्य से, उसके — शुद्धनय के आश्रय से, उस त्रिकाल भूतार्थ के — मुक्तस्वरूप के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! अभी तो पहली दशा, अभी तो पाँचवें और छठवें गुणस्थान की बातें, बापू! यह तो कोई अलौकिक बात है। आहाहा! अरे...रे...! प्रभु! तू जन्म-मरण करके थका नहीं ? चौरासी के अवतार आहाहा! चौरासी लाख योनियों में एक-एक योनि में अनन्त अवतार किये। प्रभु! तुझे थकान नहीं लगी ? वह थकान उतारने का स्थान तो प्रभु मुक्तस्वरूप विश्रामस्थान यह है। आहाहा! वह जो भूतार्थ कहा, वह विश्रामस्थान है। आहाहा!

श्रोता : क्षण में मुक्त एव कहते हो, क्षण में भूतार्थ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भूतार्थ कहो, या मुक्त एव (कहो), दोनों एक ही बात हैं। विद्यमान पदार्थ है त्रिकाली, वह मुक्तस्वरूप ही है। राग के सम्बन्धरहित चीज वह है। आहाहा! वास्तव में तो वह पर्याय के सम्बन्धरहित चीज है, बापू! भाई! वीतराग का मार्ग, उसमें यह जैनदर्शन और उसमें दिगम्बर दर्शन! आहाहा!

श्रोता : पर्यायरहित चीज है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्यायरहित चीज है, उसको यहाँ मुक्तस्वरूप और भूतार्थ कहा है। उसको स्वीकार करती है पर्याय; सम्यग्दर्शन, वह पर्याय है। ध्रुव का — भूतार्थ का निर्णय पर्याय करती है परन्तु वह पर्याय — सम्यग्दर्शन की पर्याय, सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है। आहाहा! सम्यग्दर्शन की पर्याय नव तत्त्व में जाती है (क्योंकि) भेद (है)। आहाहा! डाह्याभाई! ऐसा स्वरूप है प्रभु तेरा! तू कौन है अन्दर ?

बापू! यह देह तो मिट्टी पिण्ड जड़ है। अन्दर में पुण्य और पाप का विकल्प उठता है, वह राग, मेल, अचेतन और जड़ है। उस जड़ में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं है। इसमें जड़ में यह वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श है, पुण्य-पाप जड़ है तो वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं परन्तु है अचेतन। चेतनस्वरूप जो है, उसकी किरण पुण्य-पाप में नहीं आती है।

श्रोता : आप ऐसी बात करते हो तो भी लोग आपका विरोध क्यों करते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो उन्हें न जँचे तो वे करें क्या बेचारे ? उन्हें 'जामैं जितनी बुद्धि है, इतनौ दियो बताय, वांकौ बुरौ न मानिये और कहाँ से लायै' उन बेचारों को बुरा

नहीं कहा जाता, उनके ऊपर करुणा करते हैं। अरे...रे! यह तो कल रात्रि में सुना था भाई! मनोहरलालजी को किसी ने गले में फाँसी दे दी — ऐसा कहते हैं। क्योंकि हमने ऐसा सुना था कि हार्टफेल हो गया परन्तु मरते समय कहते हैं जीभ बाहर निकली थी, आहाहा! किसी ने गले में फाँसी दे दी, क्योंकि उनका पैसा होगा किसी के पास पाँच लाख रुपया था तो किसी एक व्यक्ति के पास ढाई लाख रुपये थे, पैसे बहुत करते थे न? पुस्तक के सेट बनाते और पैसा कमाते। अरे! (यह) तेरा काम है बापू? अरे! पैसा माँगना और (एकत्रित) करना, और बेचना, प्रभु तेरा काम नहीं है... पैसा बहुत कमाते थे — ऐसा सुना है। लाभानन्दजी ने कहा कि जीभ निकल गयी थी बाहर। आहाहा! वह ढाई लाख किसी से माँगते होंगे, पैसे होंगे उनके। सब बड़े-बड़े लोग इकट्ठे होकर आये और उनसे कहा कि तुम ईसरी में रहो। कानजीस्वामी क्यों एक जगह रहकर सर्वत्र प्रचार करते हैं? तुम एक स्थान में रहो तो ऐसा सुना है। सत्य क्या है? हमको पता नहीं। तुरन्त उन्होंने कहा एक महीने में मेरे दस हजार रुपये दो, तुम शास्त्र छपाने को — ऐसा सुना है। बात सत्य, झूठ (क्या है) हमें कुछ पता नहीं। अरे! परन्तु भाई! पैसे का तुझे क्या काम है? भाई! परन्तु पुस्तक बनाना यह क्या तेरा काम है? और उसे बेचना, प्रभु! यह कोई काम है? भाई! किसी से एक पाई भी माँगना, वह आत्मा का कार्य नहीं प्रभु! आहाहा! अरे...रे! परन्तु कल तो सुनकर ऐसा हो गया कि बेचारे को अरे...रे...! कोई मारनेवाला मिला होगा... साढ़े चार बजे तो बैठे थे, कुछ नहीं था, बैठे थे। उसमें एकदम आधे घण्टे के बाद जहाँ देखा वहाँ, आहाहा! किसी ने मार डाला होगा? गले में.... ऐसा लगता है। आहाहा! ऐसा लगता है।

यह दशा... देखो न बापू! ऐसी दशा तो अनन्त बार हो गयी प्रभु! तेरी प्रसन्नता पर में कहाँ आयी? बाहर की चीज की चमत्कृति देखकर तुझे विस्मय होता है, यह महाभ्रम है, मिथ्यात्व है। अन्दर चमत्कारी वस्तु पड़ी है, महाप्रभु देख न! चैतन्य चमत्कार! आहाहा! एक तो बात ऐसी है कि चैतन्य चमत्कार की गुण की संख्या का अन्त नहीं। क्या है यह? क्या कहते हैं? क्षेत्र में तो इतना ही है, शरीर प्रमाण भिन्न, परन्तु वह जो गुण की संख्या है, वह अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त को अनन्तगुना वर्ग करो तो भी उस संख्या का अन्त नहीं है — ऐसे अन्दर में गुण है। यह क्या कहते हैं? आहाहा! भाई! तुझे तेरी चीज का पता नहीं है। प्रभु ने भी ऐसा कहा है कि

जहाँ क्षेत्र का अन्त नहीं, उसका ज्ञान करनेवाली पर्याय... आहाहा! और उस पर्याय के पीछे जो ज्ञानगुण है, उसकी कितनी ताकत है! — ऐसे-ऐसे जो अनन्त गुण हैं, जिन गुणों को यह अनन्त गिनते... गिनते... गिनते... गिनते... यह अन्तिम धर्म-गुण है — ऐसा कभी नहीं होता। क्या कहते हैं यह? समझ में आया?

प्रभु! तेरे पाताल कुएँ में अनन्त गुण पड़े हुए हैं। इन अनन्त गुणों की कोई संख्या कि यह अनन्त अनन्त हो गया (— ऐसा नहीं है।) अनन्त को अनन्त गुणा गुणे तो भी यह अन्तिम / आखिर का गुण है — ऐसा उसमें नहीं है। क्या कहा, समझ में आया? आहाहा! पण्डितजी! ऐसा अमाप... माप कर लेती है, ज्ञान की पर्याय, उसका माप कर लेती है, परन्तु उसकी संख्या का माप नहीं है। क्या कहा यह? ज्ञान की पर्याय... प्रमाण कहो या माप कहो। प्र... माण। मा... प। तो इतने त्रिकाली गुण हैं, उसका माप ले लेती है (ज्ञान की) पर्याय। अनन्त के अनन्तपने का माप ले लेती है। आहाहा! अरे...रे! यह बात चलती नहीं, मूल बात चलती नहीं और ऊपर से सब बातें थोथे-थोथा, उसमें जन्म-मरण का अन्त नहीं आयेगा प्रभु! वह सब भटक कर मरने का रास्ता है। शुभभाव भी संसार है प्रभु! आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प है, राग है, दुःख है-दुःख है। वह पर्याय में आता है, बताया; संवर-निर्जरा होती है, यह बताया परन्तु उसमें से अकेला त्रिकाली प्रभु (उसे) भूतार्थनय से जाने हुए का नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा!

अभी उसका — व्यवहार का ज्ञान भी सच्चा नहीं, तो अन्दर में वह कैसे जा सकेगा? महासत्य प्रभु! ऐसा ज्ञान में भी सच्चा नहीं कि मैं राग से रहित मैं हूँ। राग से मेरी प्राप्ति नहीं होती। मेरी चीज तो अन्दर भिन्न है। मेरी चीज प्राप्त करने में रागादि की अपेक्षा नहीं है, व्यवहार की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! ऐसा ज्ञान में भी — परलक्षी ज्ञान में भी सच्चापन न आवे, वह अन्तर में — सत्य में जा सकेगा? समझ में आया? मार्ग तो प्रभु (यह है)। सर्वज्ञ का तो विरह पड़ा, प्रभु! अरे...रे! वे त्रिलोकीनाथ तो ऐसा कहते हैं, वहाँ महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धर भगवान तो यह कहते हैं। उसे सुनकर आये और सन्त कहते हैं। आहाहा! भाई! सम्यग्दर्शन वह कोई चीज है, उसके बिना सारा ज्ञान और व्रत, तप सब निष्फल; संसार अर्थात् निष्फल (है।) धर्म के लिए निष्फल हैं, भटकने के लिए सफल हैं। आहाहा! यह यहाँ कहा।

तीर्थ की प्रवृत्ति.... अर्थात् पर्याय की परिणति को बताने को, यह तीर्थ। यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि, चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ, सातवाँ (गुणस्थान) आदि पर्याय की प्रवृत्ति है। आहाहा! यह व्यवहारनय से कहा जाता है। प्रवृत्ति जो पर्याय की है, वह व्यवहारनय से कही जाती है। आहाहा! कितनी गम्भीरता है? आहाहा! **ऐसे व्यवहारनय से कहा जाता है। ऐसे नवतत्त्व - जिनके लक्षण जीव,....** इस जीव की व्याख्या में वह पर्याय लेना — एक समय की पर्याय; **अजीव,...** अजीवरूप से तो जीव परिणमित नहीं होता परन्तु अजीव का ज्ञान होता है न, उसे यहाँ अजीव के ज्ञान को अजीव कहा गया है। समझ में आया? ऐसी बात है प्रभु! मार्ग, भाई! आहाहा!

श्रोता : अजीव का ज्ञान करने से ज्ञान अजीव हो जाता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अजीवरूप नहीं होता है परन्तु अजीव का ज्ञान है, उस ज्ञान को यहाँ अजीव कहते हैं। नवतत्त्वरूप से परिणमा ऐसा कहते हैं न? तो क्या जड़रूप परिणमता है? समझ में आया? परन्तु अजीव का ज्ञान हुआ, उसे ही अजीव कहा गया है। उसरूप परिणमित हुआ है।

जीव, अजीव, (अब) पुण्य.... शुभरूप परिणमता है। अभी यह भी स्पष्टीकरण करेंगे। **पाप,...** हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, पाप की पर्यायरूप परिणमता है। **आस्रव,....** दोनों मिलकर आस्रव — पुण्य और पाप दो मिलकर आस्रव; क्योंकि दोनों आस्रव हैं, इससे नया कर्म आता है, धर्म तो होता नहीं। आहाहा! दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, मास-खमण का अपवास, वह सब विकल्प है, वह आस्रव है। सूक्ष्म बात है प्रभु! इस आस्रव से तो बंध होता है परन्तु पर्याय होती है, पर्याय में। आस्रव, बताना है न नौ।

संवर,.... यह शुद्धपर्याय है। पर्याय में शुद्धपर्याय है परन्तु वह व्यवहारनय का विषय है। पर्याय है न? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय स्व के आश्रय से हुई, वह संवर भी व्यवहारनय का विषय है (क्योंकि) पर्याय है न? आहाहा! प्रभु! देख तो सही तेरी बलिहारी! उस पर्याय से पार तेरी चीज अन्दर है। आहाहा!

अरे! जिसे यह बात सुनने को न मिले, वह बेचारा कहाँ विचार करे और कहाँ जाये? अरे...रे! और वह विपरीत मान्यता में, भले स्वयं एकान्त करे परन्तु प्रभु! इस

मिथ्यात्व का फल बहुत कठोर है। प्रभु नाथ! आहाहा! इस मिथ्यात्व के फल में तो नरक-निगोद है। अरे...रे! इसका तिरस्कार कैसे किया जाये? समझ में आया? जो कोई मिथ्यात्व का सेवन करते हैं और सम्यक् चीज को एकान्त कहते हैं तो उस मिथ्यात्व के फल में महादु:ख होगा भाई! तो उस जीव को दु:ख होगा, उसका तिरस्कार क्यों करे, प्रभु? वह तो जानने योग्य है — ऐसे जगत् में होता है। आहाहा! किसी का विरोध करना — ऐसा है नहीं और उस व्यक्ति के प्रति वैर करना (यह भी नहीं क्योंकि वह भी) भगवान है। वह भी वस्तु से तो भगवान है। एक समय की भूल है तो भगवान स्वयमेव भूल मिटायेगा। समझ में आया? किसी व्यक्ति को विरोध से नहीं देखना (नहीं चाहिए।) सभी आत्माएँ भगवान हैं। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं आहाहा! संवर की पर्याय उत्पन्न निर्मल शुद्ध, हाँ! परन्तु है पर्याय न? वह व्यवहारनय का विषय हुआ। आहाहा! **निर्जरा,....** संवर का अर्थ शुद्धि, पुण्य-पाप अशुद्ध-मलिन और संवर में शुद्धि है, पवित्रता (है) और निर्जरा में शुद्धि की वृद्धि है परन्तु है वह पर्याय; और **बन्ध...** राग में रुकना, वह बन्ध है, वह भी एक पर्याय है। कर्म के बन्ध को तो एक ओर दूर रखो। **मोक्ष....** वह भी एक पर्याय है। आहाहा! जीवद्रव्य के दो भेद करना — संसार और मोक्ष, वह व्यवहार हो गया। त्रिकाली ज्ञायकभाव भगवान, यह निश्चय हुआ और उसका संसार और मोक्ष — दो भेद डालना, वह व्यवहारनय हो गया। आहाहा! समझ में आये उतना समझना प्रभु! यह तो परमात्मा के घर की बात है, प्रभु! आहाहा! त्रिलोकनाथ ने ऐसा कहा, वैसा सन्त आडतिया होकर बताते हैं। आहाहा! मार्ग तो ऐसा है प्रभु! तू बाहर में कुछ न कुछ विस्यमता मानकर रुक गया है प्रभु! तेरा द्वार-द्वार खुला नहीं किया तूने। राग के प्रेम से, राग का रस है वह अन्दर में अपने अरागी स्वभाव में नहीं जा सकता है। समझ में आया? यहाँ तो मोक्ष की पर्याय का जिसको लक्ष्य है, वह भी व्यवहार का लक्ष्य है। आहाहा! **मोक्ष है - उनमें एकत्व प्रगट करनेवाले....** आहाहा! यह पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, (बन्ध), मोक्ष, पर्याय, यह तो अनेकपना हुआ, उनमें से एकत्व प्रगट करनेवाला — त्रिकाली ज्ञायकभाव पर दृष्टि करने से.... आहाहा! **एकत्व प्रगट करनेवाले भूतार्थनय से....** त्रिकाली ज्ञायकभाव पर दृष्टि करने

से एकत्व प्राप्त करके, एकत्व प्राप्त करके अनेकपने की पर्यायों में से निकलकर एकत्व त्रिकाली ज्ञायकभाव में एकत्व प्राप्त करके.... आहाहा! ऐसी बात है अब। सभा में समाज को कहे, यह मार्ग बापू! मार्ग तो यह है। समझ में आया?

चौथा काल हो या पाँचवाँ परन्तु ....यह तो पंचम काल के जीव को कहते हैं। पंचम काल के तो साधु हैं, ये पंचम काल के आचार्य, साधु स्वयं हैं, (वे) पंचम काल के जीव को कहते हैं। तो कोई ऐसा कहे कि यह तो चौथे काल की बात है... भगवान ऐसा नहीं होता। नाथ! तेरी चीज की महिमा को कोई काल लागू नहीं पड़ता। समझ में आया? और तेरी चीज की महिमा में कोई काल रुक नहीं सकता। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि नौ प्रकार की पर्यायों में जो अनेकपना है — व्यवहारनय का विषय है, उसे छोड़कर एकत्व प्रगट करनेवाले भूतार्थनय, एकरूप प्रगट करनेवाले त्रिकाली को देखने से एकरूप प्रगट होता है। आहाहा!

शुद्धनयरूप से स्थापित आत्मा की अनुभूति.... यह शुद्धनय से स्थापित, त्रिकाली के आश्रय से जो एकत्व हुआ — ऐसी जो आत्मा की अनुभूति... आहाहा! वह आत्मा की अनुभूति की आनन्द की पर्याय,... यह अनुभूति आयी उससे। इस टीका का नाम आत्मख्याति है। इस टीका का नाम आत्मख्याति है, आत्मा की प्रसिद्धि है तो यह लिया, देखो! जिसका लक्षण... आहाहा! शुद्धनय से नवतत्त्व और आत्मा की अनुभूति शुद्धनयरूप से स्थापित... आहाहा! आत्मा की अनुभूति, स्व का त्रिकाल का आश्रय करके जो अनुभूति हुई, **जिसका लक्षण आत्मख्याति है....** देखो, आत्मा प्रसिद्ध हुआ। जो राग की एकता में अप्रसिद्ध था — दया, दान, विकल्प के प्रेम में वह आत्मा अप्रसिद्ध था। आहाहा! ढँक गया था। वह अन्दर में राग से और पर्याय से भिन्नता करके अपने आत्मा को जहाँ देखा, जाना, माना तो वह जो शक्ति थी, वह पर्याय में व्यक्तरूप प्रसिद्ध हुआ कि मैं तो यह शुद्ध हूँ।

श्रोता : आत्मा की अनुभूति में आत्मा प्रसिद्ध होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रसिद्ध होता है। आहाहा! समझ में आया? पहले संवर, निर्जरा कही, वह पर्याय है परन्तु उसका लक्ष्य छोड़ने को परन्तु उसके आश्रय से संवर-निर्जरा

जो हुई वह तो अनुभूति है। समझ में आया? पहले जो कहा कि उसको नव तो भेद है, उसका आश्रय छुड़ाया। समझ में आया? परन्तु आत्मा का आश्रय लिया तो जो अनुभूति हुई, वह संवर-निर्जरास्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? वह आत्मख्याति है। वह प्राप्त होती है। आहाहा! **(शुद्धनय से नवतत्त्वों को जानने से आत्मा की अनुभूति होती है, इस हेतु से यह नियम कहा है।)** विशेष नौ प्रकार हैं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)